

द्वितीयोऽध्यायः
पुराणोत्पत्तिः
पुराण की उत्पत्ति

सुमन्तुरुवाच

शृणुष्वेदं महाबाहो पुराणं पञ्चलक्षणम्। यच्छ्रुत्वा मुच्यते राजन्पुरुषो ब्रह्महत्याया॥ १॥
पर्वाणि चात्र वै पञ्च कीर्तितानि स्वयम्भुवा। प्रथमं कथ्यते ब्राह्मं द्वितीयं वैष्णवं स्मृतम्॥ २॥
तृतीयं शैवमाख्यातं चतुर्थं त्वाष्ट्रमुच्यते। पञ्चमं प्रतिसर्गाख्यं सर्वलोकैः सुपूजितम्॥ ३॥
एतानि तात पर्वाणि लक्षणानि निबोध मे। सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च॥ ४॥
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्। चतुर्दशभिर्विद्याभिर्भूषितं कुरुनन्दन॥ ५॥
अङ्गानि चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ ६॥

सुमन्तु कहते हैं— हे राजन्! महाबाहो! इस पुराण के पाँच लक्षण हैं। उनको सुनें। इसे सुनकर व्यक्ति ब्रह्महत्यादि महापातक से मुक्त हो जाता है। स्वयम्भूदेव ने इसके पंचपर्व की बात कही है। प्रथम ब्राह्म, द्वितीय वैष्णव, तृतीय शैव तथा चतुर्थ त्वाष्ट्र पर्व है। पंचम है प्रतिसर्ग, जो सबके द्वारा सुपूजित है। इन पंचपर्व के लक्षणों को सुनें। सर्ग अर्थात् सृष्टि उपक्रम, प्रतिसर्ग अर्थात् प्रथम उपक्रमोपरान्त दक्ष आदि प्रजापतिगण की सृष्टि, वंश, मन्वन्तर (यह ७१ दिव्ययुगों का कहा गया है) तथा वंश में जन्म लेने वाले राजाओं के चरित, ये ५ लक्षण पुराणों के कहे गये हैं। हे कुरुनन्दन! सभी पुराण चतुर्दश (१४) विद्याओं से भूषित हैं॥१-६॥

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः। अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः॥ ७॥
प्रथमं कथ्यते सर्गो भूतानामिह सर्वशः। यच्छ्रुत्वा पापनिर्मुक्तो याति शान्तिमनुत्तमाम्॥ ८॥
जगदासीत्पुरा तात तमोभूतमलक्षणम्। अविज्ञेयमतर्क्यं च प्रसुप्तमिव सर्वशः॥ ९॥
ततः स भगवानीशो ह्यव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्। महाभूतानि वृत्तौजाः प्रोत्थितस्तमनाशनः॥ १०॥
योऽसावतीन्द्रियोऽग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः। सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एष स्वयमुत्थितः॥ ११॥

ये १४ विद्यायें हैं—४ वेद, वेद के षडंग, मीमांसा, विस्तृत न्यायशास्त्र, पुराण तथा धर्मशास्त्र (स्मृतियाँ), आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा अर्थशास्त्र— इन ४ को मिलाकर सब १८ विद्याएँ होती हैं। इसमें पहले भूतसृष्टि का वर्णन है। इसको सुनकर मनुष्य पापरहित होकर शान्ति प्राप्त करते हैं। हे तात! पूर्व में यह जगत् तमोमय था। इसमें कोई भी भूतलक्षण नहीं था। यह अविज्ञात था तथा प्रसुप्तवत् था। तब भगवान् परमेश्वर ने इस अव्यक्त रूप जगत् को प्रकट किया तथा महान् भूतसमूह को प्रकट करते हुये जाग्रत् हो गये। वे तब अन्धकार का नाश करते हुये उठते हैं। इन्द्रियातीत, अग्राह्य, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन, सर्वजीवमय, अचिन्त्य भगवान् तब उठ जाते हैं॥७-११॥

योऽसौ षड्विंशको लोके तथा यः पुरुषोत्तमः। भास्करश्च महाबाहो परं ब्रह्म च कथ्यते॥ १२॥
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। अत एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥ १३॥
यस्मादुत्पद्यते सर्वं सदेवासुरमानुषम्। बीजं शुक्रं तथा रेत उग्रं वीर्यं च कथ्यते॥ १४॥
वीर्यस्यैतानि नामानि कथितानि स्वयम्भुवा। तदण्डमभवद्भ्रमं ज्वालामालाकुलं विभो ॥ १५॥

यस्मिञ्ज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः। सुरज्येष्ठश्चतुर्वक्त्रः परमेष्ठी पितामहः॥ १६॥
क्षेत्रज्ञः पुरुषो वेधाः शम्भुर्नारायणस्तथा। पर्यायवाचकैः शब्दैरेवं ब्रह्मा प्रकीर्त्यते॥ १७॥

हे पुरुषोत्तम! लोक में २६ पदार्थ कहे गये हैं। हे महाबाहो! वे ही भास्कर तथा परब्रह्म कहे जाते हैं। तब वे भगवान् अपने शरीर से ही विविध प्रजासृष्टि की इच्छा करते हैं। वे सबसे पहले जल की सृष्टि करके उसमें अपने वीर्य की स्थापना करते हैं। इससे ही समस्त देव, असुर, मनुष्य तथा जगत् की उत्पत्ति होती है। बीज, शुक्र, रेतस्, उग्र तथा वीर्य भी वही है। स्वयम्भु ने स्वयं वीर्य के इन नामों को कहा है। हे विभु! वह वीर्य ज्वालामाला से व्याप्त होकर स्वर्ण के अंडे के रूप में परिणत हो गया। इससे ही सर्वलोकपितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति कही गयी है। ये ब्रह्मा समस्त देवों में प्रधान, चतुरानन, परमेष्ठी, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, वेधा, शंभु तथा नारायण इन पर्यायवाची शब्दों से पुकारे जाते हैं॥ १२-१७॥

सदा मनीषिभिस्तात विरिञ्चिः कञ्जजस्तथा। आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः॥ १८॥
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः। अरमित्येव शीघ्राय नियताः कविभिः कृताः॥ १९॥
आप एवाणवीभूत्वा सुशीघ्रास्तेन ता नराः। यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्॥ २०॥

हे तात! मनीषीगत विरिञ्चि, कमलोद्भव नामों से उनको सम्बोधित करते हैं। उनका नाम नारायण है। इसका तात्पर्य है— जल शब्द नार तथा नरपुत्र जल ही (नार) इनका प्रथम निवास (अयन) रहा है, तभी वे नार+अयन = नारायण हैं। कवियों के अनुसार 'अरम्' अर्थात् 'शीघ्र' होता है। जल ही समुद्र के रूप में 'शीघ्रता' प्रदर्शित करता है। तभी वह नार है। सर्वकारणभूत, अव्यक्त, नित्य तथा सत्-असदात्मक से उत्पन्न पुरुष ही जगत् में ब्रह्मा कहलाते हैं॥ १८-२०॥

तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते। एवं स भगवानण्डे तत्त्वमेव निरूप्य वै॥ २१॥
ध्यानमास्थाय राजेन्द्र तदण्डमकरोद्विधा। शकलाभ्यां च राजेन्द्र दिवं भूमिं च निर्ममे॥ २२॥
अन्तर्व्योम दिशश्चाष्टौ वारुणं स्थानमेव हि। ऊर्ध्वं महानातो राजन् समन्ताल्लोकभूतये॥ २३॥
महतश्चाप्यहंकारस्तस्माच्च त्रिगुणा अपि। त्रिगुणा अतिसूक्ष्मास्तु बुद्धिगम्या हि भारत॥ २४॥
उत्पत्तिहेतुभूता वै भूतानां महतां नृप। तेषामेव गृहीतानि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि तु॥ २५॥
तथैवावयवाः सूक्ष्माः षण्णामप्यमितौजसाम्॥ २६॥

संनिवेश्यात्ममात्रासु स राजन्भगवान्विभुः। भूतानि निर्ममे तात सर्वाणि विधिपूर्वकम्॥ २७॥

तदनुसार सृष्टि करने से ही उनको ब्रह्मा कहा गया। भगवान् ने सृष्टि का निर्णय लेकर उस सुवर्ण अण्ड में समस्त तत्त्वों का निरूपण किया। अब उन्होंने इससे पूर्व में रचित सृष्टिक्रम का ध्यान करके उस अण्ड को दो भागों में विभक्त कर दिया। हे राजेन्द्र! उसका एक भाग दिव् (आकाश) तथा द्वितीय भाग भूमि है। उन्होंने अन्तर्व्योम, आठों दिशाओं तथा वारुण स्थान (जल) का निर्माण किया। हे राजन्! उन परमेश्वर ने (महान् ने) ऊर्ध्वगत होकर लोक-कल्याणार्थ इन सबका निर्माण किया। अब इस महत्तत्त्व से अहंकार, अहंकार से सत्त्व-रजतम रूप त्रिगुण प्रकट हो गये। हे भारत! ये गुण अतिसूक्ष्म हैं। जिनको केवल बुद्धि से ही व्यक्त किया जा सकता है। हे नृप! इन त्रिगुण को ही सभी महान् भूतसमूह की उत्पत्ति का महत् कारण जानें। इन त्रिगुण से ही शनैः-शनैः पञ्चेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। इन अमित तैजस के अवयव भी अतीव सूक्ष्म हैं। हे राजन्! महैश्वर्ययुक्त भगवान् ने स्वयं आत्ममात्राओं में सन्निवेश करके समस्त भूतसमूह की विधिवत् उत्पत्ति की है॥ २१-२७॥

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयाणि षट्। तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः॥ २८॥
महान्ति तानि भूतानि आविशन्ति ततो विभुम्। कर्मणा सह राजेन्द्र सगुणाश्चापि वै गुणाः॥ २९॥
तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम्। सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवत्यव्ययाद्वयम्॥ ३०॥
भूतादिमहतस्तात येन व्याप्तमिदं जगत्। तस्मादपि महाबाहो पुरुषाः पञ्च एव हि॥ ३१॥
केचिदेवं परां तात सृष्टिमिच्छन्ति पण्डिताः। अन्येऽप्येवं महाबाहो प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ३२॥
योऽसावात्मा परस्तात कल्पादौ सृजते तनुम्। प्रजनश्च महाबाहो सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः॥ ३३॥

स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानं पुनः पुनः। हिंसाहिंसे मृदुकूरे धर्माधर्मे ऋतानृते॥ ४९॥
 यद्यथास्याभवत्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत्। यथा च लिङ्गान्मृतवः स्वयमेवानुपर्यये॥ ५०॥
 स्वानिस्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः। लोकस्येह विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः॥ ५१॥
 ब्रह्म क्षत्रं तथा चोभौ वैश्यशूद्रो नृपोत्तम। मुखानि यानि चत्वारि तेभ्यो वेदा विनिःसृताः॥ ५२॥

हे वीर! तत्पश्चात् उन देवदेव ने अपने द्वारा सृजित प्रजा को मुख-दुःखादि द्वन्द्वों में प्रजावर्ग को नियोजित किया। जो अणु परिणाम तथा अविनाशिनी पञ्चमात्राये हैं, उनसे ही जगत् का क्रम से उद्भव होता है। हे राजन्! पूर्व सृष्टि में जीव ने नियुक्त होकर जो कुछ कर्म किया था, पुनः-पुनः सृष्टि होने पर उसके फल को ही प्राप्त करता है। हिंस्र-अहिंस्र, मृदु-कूर, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य रूप जिसका जो कर्म था, वही इस नव सृष्टि में भी स्वयं उपस्थित होकर उसे प्राप्त होता है। हे राजन्! जैसे समय-समय पर ऋतु अपने चिह्नों को स्वयं प्राप्त कर लेते हैं तदनुसार प्रत्येक शरीरधारी जीव भी इस नयी सृष्टि में अपने पूर्व सृष्टि में कृत प्राक्तन कर्मों को स्वयं पा लेता है। हे नृपश्रेष्ठ! लोकवृद्धि हेतु मुख-बाहु-उरु तथा चरण से उत्पत्ति होती है। (ब्रह्मा के) क्रमशः मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य तथा चरण से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मा के चार मुख से वेद प्रादुर्भूत हो गये॥ ४७-५२॥

ऋग्वेदसंहिता तात वसिष्ठेन महात्मना। पूर्वान्मुखान्महाबाहो दक्षिणाच्चापि वै शृणु॥ ५३॥
 यजुर्वेदो महाराज याज्ञवल्क्येन वै सह। सामानि पश्चिमात्तात गौतमश्च महानृषिः॥ ५४॥
 अथर्ववेदो राजेन्द्र मुखाच्चाप्युत्तरात्पुनः। ऋषिश्चापि तथा राजञ्छौनको लोकपूजितः॥ ५५॥

हे तात! तब महात्मा वसिष्ठ ने ऋग्वेद संहिता को ब्रह्मदेव के पूर्वमुख से प्राप्त किया। अब दाहिने मुख से जो वेद की उत्पत्ति है, उसे सुनें। ब्रह्मदेव के दाहिने मुख से याज्ञवल्क्य ऋषि ने यजुर्वेद की प्राप्ति की। हे तात! पश्चिम मुख से महर्षि गौतम ने सामवेद की प्राप्ति की। हे नृप! हे राजेन्द्र! उनके उत्तर मुख से लोकवन्दित शौनक ऋषि को अथर्ववेद की प्राप्ति हुई॥ ५३-५५॥

यत्तन्मुखं महाबाहो पञ्चमं लोकविश्रुतम्। अष्टादशपुराणानि सेतिहासानि भारत॥ ५६॥
 निर्गतानि ततस्तस्मान्मुखात्कुरुकुलोद्बह। तथान्याः स्मृतयश्चापि यमाद्या लोकपूजिताः॥ ५७॥
 ततः स भगवान्देवो द्विधा देहमकारयत्। द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्॥ ५८॥
 अर्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजत्प्रभुः। तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट्॥ ५९॥
 स चकार तपो राजन्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। पतीन्प्रजानामसृजन्महर्षिनादितो दश॥ ६०॥

हे महाबाहु! हे भारत! ब्रह्मदेव के पंचममुख से इतिहास तथा अष्टादश पुराणों का आविर्भाव हुआ। हे कुरुकुलोद्भव! ब्रह्मदेव के इसी पंचममुख से यम आदि द्वारा कही गयी लोकपूजित स्मृतियों का भी आविर्भाव हुआ है। ब्रह्मदेव ने अपनी देह को भागद्वय में बाँटा, जिसके आधे से पुरुषाकृति तथा आधे से नारी आकृति की उत्पत्ति हो गयी। हे राजेन्द्र! उस नारी आकृति से ही प्रभु ब्रह्मदेव द्वारा विराट् सृष्टि की गयी। जिसने तपस्या की तथा सृष्टि की, वह स्वयं विराट् पुरुष ही है। हे राजन्! प्रजागण की सृष्टि की इच्छा करके उन्होंने तप किया। तप द्वारा सबसे पहले १० प्रजापति ऋषि सृष्ट हो गये॥ ५६-६०॥

नारदं च भृगुं तात कं प्रचेतसमेव हि। पुलहं क्रतुं पुलस्त्यं च अत्रिमङ्गिरसं तथा॥ ६१॥
 मरीचिं चापि राजेन्द्र योऽसावाद्यः प्रजापतिः। एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र असृजद्भूरितेजसः॥ ६२॥
 अथ देवानृषीन्दैत्यान्सोऽसृजत्कुरुनन्दन। यक्षरक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान्॥ ६३॥
 मनुष्याणां पितृणां च सर्पाणां चैव भारत। नागानां च महाबाहो ससर्ज विविधान्गणान्॥ ६४॥
 क्षणरुचोऽशनिगणानोहितेन्द्रधनूंषि च। धूमकेतूस्तथा चोल्का निर्वाताङ्ग्योतिषां गणान्॥ ६५॥
 मनुष्यान्किन्नरान्मत्स्यान्वराहांश्च विहङ्गमान्। गजानश्चानथ पशून्मृगान्व्यालांश्च भारत॥ ६६॥
 कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकालिक्षकमत्कुणान्। सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम्॥ ६७॥

उनके नाम हैं—नारद, भृगु, वसिष्ठ, प्रचेता, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, अंगिरा तथा मरीचि। हे राजेन्द्र! मरीचि प्रथम प्रजापति कहे गये हैं। हे राजन्! ये १० प्रजापति ऋषिगण तथा इनके समान ही परम तेजयुक्त अन्य बहुत से ऋषिगण ब्रह्मदेव द्वारा

उत्पन्न किये गये। हे कुरुनन्दन! इस प्रकार से ब्रह्मदेव ने देवगण, ऋषिगण तथा दैत्यों का सृजन किया। हे भारत! हे महाबाहो! उनके द्वारा यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, मनुष्य, पितृगण, सर्प तथा नागगणों की सृष्टि की गयी। क्षणपर्यन्त चमक कर तिरोहित हो जाने वाली आकाशीय विद्युत्, इन्द्रधनुष, धूमकेतु, उल्का तथा वातरहित ज्योतिष चक्र की सृष्टि भी उन देवदेव ने की। हे कुरुनन्दन! इस प्रकार भगवान् ब्रह्मदेव ने मनुष्य, किन्नर, मत्स्य, वराह, पक्षी, हाथी, अश्व, पशु, मृग, सर्प, कृमि, कीट, पतंग, जूँ, लीख, खटमल, मच्छर तथा दस विविध स्थावर समूह की सृष्टि की ॥६१-६७॥

एवं स भास्करो देवः ससर्ज भुवनत्रयम्। येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम्॥६८॥
कथयिष्यामि तत्सर्वं क्रमयोगं च जन्मनि। गजा व्याला मृगास्तात पशवश्च पृथग्विधाः॥६९॥
पिशाचा मानुषास्तात रक्षांसि च जरायुजाः। द्विजास्तु अण्डजाः सर्पा नक्रा मत्स्याः सकच्छपाः॥७०॥
एवंविधानि यानीह स्थलजान्यौदकानि च। स्वेदजं दंशमशकं यूकालिक्षकमत्कुणाः॥७१॥
ऊष्मणा चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम्। उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः॥७२॥

उन भास्करदेव द्वारा (ब्रह्मा ही भास्कर हैं) इस प्रकार भुवनत्रय को सृष्ट किया गया। इस लोक में जिस-जिस भूत का जैसा कार्य है, वह सब मैं उनकी उत्पत्ति के साथ कह रहा हूँ। हे तात! अब मैं हाथी, सर्प, मृग तथा विविध पशुजीवों की सृष्टि तथा उनके कर्मों को कहता हूँ। हे तात! पिशाच, जरायुज, मनुष्य, राक्षस, सर्प, नक्र, मत्स्य, कच्छप, पक्षीगण तथा अण्डजों का भी कर्म कहा जाता है। भूमि तथा जल में पैदा होने वाले दंश, मच्छर, जूँ, लीख, खटमल ये सभी स्वेदज जीव हैं। इनका जन्म ऊष्मा से होता है। बीज तथा काण्ड से उत्पन्न होने वालों को उद्भिज कहते हैं॥६८-७२॥

ओषध्यः फलपाकान्ता नानाविधफलोपगाः। अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः॥७३॥
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तुभयतः स्मृताः। गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः॥७४॥
बीजकाण्डरूपाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च। तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना॥७५॥
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः। एतावत्यस्तु गतयः प्रोद्भूताः कुरुनन्दन॥७६॥

अनेक फलयुक्त ओषधि समूह होते हैं, जो फल के पकते ही सूख जाते हैं, जो पुष्परहित हैं तथापि फल उत्पन्न करते हैं, वे वनस्पति हैं। फलित तथा पुष्पित होने वाले वृक्ष कहलाते हैं। गुच्छ एवं गुल्म के भी अनेक भेद हैं। तृणों की भी अनेक जातियाँ हैं, जो बीज तथा काण्ड से जल लेकर वृक्षों पर फैलने वाली होती हैं, वे सभी लता तथा वल्ली कहलाती हैं। इस प्रकार पूर्वजन्मार्जित कर्म-बन्धन से आबद्ध ये सब अज्ञानरूपी अन्धकार से आच्छन्न रहते हैं। इनमें सबका अन्तःकरण चेतनायुक्त होता है तथा सुख-दुःख संवेग का अनुभव करता है। हे कुरुनन्दन! जीव-समूह की इतनी गतियाँ प्रकट होती रहती हैं, अर्थात् लक्षित होती रहती हैं॥७३-७६॥

तस्माद्देवादीप्तिमन्तो भास्कराच्च महात्मनः। घोरेऽस्मिस्तात संसारे नित्यं सततयायिनि॥७७॥
एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं राजल्लोकगुरुं परम्। तिरोभूतः स भूतात्मा कालं कालेन पीडयन्॥७८॥
यदा स देव जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत्। यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति॥७९॥
तस्मिन्स्वपिति राजेन्द्र जन्तवः कर्मबन्धनाः। स्वकर्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति॥८०॥

हे तात! यह सब उन प्रभु तथा महात्मा भास्करदेव के द्वारा इस घोरतम संसार में प्रतिक्षण निरन्तर चालित होते रहते हैं। वे सर्वभूतात्मा सर्वलोकगुरु हैं। वे काल द्वारा ही काल का पीड़न करके सभी की सृष्टि के अनन्तर तिरोहित हो जाते हैं। जब तक ये आत्मदेव जाग्रत् हैं, तभी तक समस्त जगत् चेष्टा से युक्त रहता है। इन प्रभु शान्तात्मा के शयन करते ही समस्त सृष्टि का तिरोधान हो जाता है। तब यह जगत् विलीन हो जाता है। हे राजेन्द्र! उस स्थिति में कर्म के बन्धन से आबद्ध जीवगण भी उन सर्वभूतात्मा के शयन करते ही स्वकर्म-कलाप से निवृत्त हो जाते हैं। तब मन भी ग्लानियुक्त (स्तब्ध) हो जाता है॥७७-८०॥

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि। तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति भारत॥८१॥
तमो यदा समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः। न नवं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः॥८२॥

यदाहंमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च। समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति॥८३॥
एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं जगत्प्रभुः। संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः॥८४॥

हे भारत! उस स्थिति में उन महात्मा देवाधिदेव में सब कुछ युगपत् रूप से विलीन हो जाता है और वे सुखपूर्वक शयन करते हैं। जब वे समस्त इंद्रियसमूह के साथ तमोगुण का आश्रय लेकर चिरकाल पर्यन्त स्थिर रह जाते हैं तथा किसी नवीन कर्म का उद्भव नहीं होता, तब वे स्वमूर्ति से बहिर्गत होते हैं। वे अब स्थावर-जंगमात्मक बीज में प्रविष्ट हो जाते हैं। जब वे बीज से अहंमात्रिक हो जाते हैं, तब वे उसमें ही प्रवेश करके अपनी मूर्ति (पूर्णाहंभाव) को छोड़कर जीवावस्था में आ जाते हैं। वे जगत्प्रभु अव्ययदेव जाग्रत् तथा स्वप्न अवस्था से निरन्तर इस जगत् को जीवनदान देते हैं तथा उसे (नियमानुवर्तिता से) सीमित कर देते हैं॥८१-८४॥

कल्पादौ सृजते तात अन्ते कल्पस्य संहरेत्। दिनं तस्येह यत्तात कल्पान्तमिति कथ्यते॥८५॥
कालसंख्यां ततस्तस्य कल्पस्य शृणु भारत। निमेषा दश चाष्टौ च अक्षणः काष्ठा निगद्यते॥८६॥
त्रिंशत्काष्ठाः कलामाहुः क्षणस्त्रिंशत्कलाः स्मृताः। मुहूर्तमथ मौहूर्ता वदन्ति द्वादश क्षणम्॥८७॥
त्रिंशन्मुहूर्तमुद्दिष्टमहोरात्रं मनीषिभिः। मासस्त्रिंशदहोरात्रं द्वौ द्वौ मासावृतुः स्मृतः॥८८॥

वे जगत्प्रभु कल्प के आदि में सृजन करते हैं तथा कल्पान्त में सृष्टि का संहार कर देते हैं। जो उनका दिन है (दिन का अन्त है) वही कल्पान्त है। हे भारत! अब उसकी अवधि का परिमाण सुनें। स्वतः पलक बन्द होने तथा खुलने में जो समय व्यतीत होता है, वह निमेष है। ऐसे १८ निमेष की एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठाओं की एक कला कही गयी है। ऐसी ३० कलाओं का एक क्षण होता है। मुहूर्तश्च विद्वान् १२ क्षणों का एक मुहूर्त कहते हैं। मनीषीगण द्वारा एक दिन-रात में ३० मुहूर्त निश्चित किये गये हैं। तीस दिन-रात का एक मास होता है। दो मास की एक ऋतु कही गयी है॥८५-८८॥

ऋतुत्रयमप्ययनमयने द्वे तु वत्सरः। अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके॥८९॥
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः। पित्र्ये राज्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः॥९०॥
कर्म चेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी। दैवे राज्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः॥९१॥
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्यादक्षिणायनम्। ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं महीपते॥९२॥
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोध मे। चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्॥९३॥
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः। त्रेता त्रीणि सहस्राणि वर्षाणि च विदुर्बुधाः॥९४॥

तीन ऋतुएँ एक अयन के बराबर होती हैं। दो अयन का एक वर्ष माना जाता है। मनुष्यों तथा देवगण के दिन-रात का बँटवारा सूर्य द्वारा किया जाता है। भूतों हेतु तथा शयनादि हेतु रात्रि है। कर्म करने के लिये दिन है। मनुष्यों का एक मास पितृगण का एक दिन-रात है। अर्थात् मनुष्यों का एक पक्ष उनकी रात है, दूसरा पक्ष दिन है। मनुष्यों का एक वर्ष देवगण का एक दिन-रात है। पितरों के लिये मनुष्य का एक शुक्लपक्ष उनका दिन है तथा कृष्णपक्ष उनकी रात्रि है। उत्तरायण देवगण का दिन है। दक्षिणायन उनकी रात्रि है। हे महीपते! ब्रह्मा के रात्रि तथा दिन के परिमाण को प्रत्येक युग क्रम से सुनें। सत्ययुग ४००० वर्षों का है। उसकी संधि तथा सन्ध्यांश भी ८०० वर्ष का हो गया। सन्ध्यांश का परिमाण भी वही है। विद्वानों के मत से त्रेता का काल ३००० वर्ष है॥८९-९४॥

शतानि षट् च राजेन्द्र सन्ध्यासन्ध्यांशयोः पृथक्। वर्षाणां द्वे सहस्रे तु द्वापरे परिकीर्तिते॥९५॥
चत्वारि च शतान्याहुः सन्ध्यासन्ध्यांशयोर्बुधः। सहस्रं कथितं तिष्ये शतद्वयसमन्वितम्॥९६॥
एषा चतुर्युगस्यापि संख्या प्रोक्ता नृपोत्तम। यदेतत्परिसंख्या तमादावेव चतुर्युगम्॥९७॥
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते। दैविकानां युगानां तु सहस्रपरिसंख्यया॥९८॥

त्रेता की सन्ध्या तथा सन्ध्यांश का प्रमाण ६०० वर्ष है। द्वापर का प्रमाण २००० वर्ष है। विद्वान् लोग उसकी सन्ध्या तथा सन्ध्यांश का प्रमाण ४०० वर्ष बतलाते हैं। कलियुग का प्रमाण १००० वर्ष का है। उसकी सन्ध्या तथा सन्ध्यांश २०० वर्ष है। हे श्रेष्ठ!

चारों युगों की संख्या इसी प्रकार से है। मैंने यह चारों युगों का जो प्रमाण कहा है, वही १२००० वर्ष देवगण का युग है। देवगण के इस प्रकार के १००० युगों से ब्रह्मा का १ दिन होता है उतने ही १००० देवयुग की ब्रह्मा की रात्रि होती है॥१५-१८॥

ब्राह्ममेकमहर्जयं तावती रात्रिरुच्यते। एतद्युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः॥ १९॥
रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः। ततोऽसौ युगपर्यन्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते॥ १००॥
प्रतिबुद्धस्तु सृजति मनः सदसदात्मकम्। मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया॥ १०१॥

देवगण के १००० युग की समाप्ति पर ब्रह्मा का एक पुण्यदिन समाप्त होता है तथा १००० युग की समाप्ति पर उनकी एक रात्रि समाप्त होती है। इस रात्रि के व्यतीत हो जाने पर भगवान् अपने शयन से जाग जाते हैं। तब वे प्रबुद्ध होकर सत् तथा असत् रूप मन की सृष्टि करते हैं। उनका यह मन सृष्टि विस्तार भावना का अनुगत होकर सृजन करता है॥१९-१०१॥

विपुलं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः। विपुलात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः॥ १०२॥
बलवाञ्जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः। वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम्॥ १०३॥
उत्पद्यते विचित्रांशुस्तस्य रूपं गुणं विदुः। तस्मादपि विकुर्वाणादापो जाताः स्मृता बुधैः॥ १०४॥
तासां गुणो रसो ज्ञेयः सर्वलोकस्य भावनः। अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः॥ १०५॥

उस सृष्टि से विपुल आकाशोत्पत्ति होती है, जिसका गुण है शब्द। आकाश के विकार से सुगन्धि का वहन करने वाली पवित्र, बलवान् तथा स्पर्शगुण से युक्त वायु की उत्पत्ति होती है। यह बुद्धिमानों की स्मृति में है। वायु के विकार द्वारा अन्धकार को समाप्त करने वाले, विचित्र किरण से युक्त तेज की उत्पत्ति हो गयी। इसका गुण है रूप। तेज के विकार से जलोत्पत्ति हो गयी। इस का गुण है रस जो जगत् को जीवन प्रदान करता है। जल से ही पृथिवी की उत्पत्ति हुई। इसका गुण है गन्ध। यही सृष्टि का आदि क्रम कहा गया है॥१०२-१०५॥

यत्प्रागद्वादशसाहस्रमुक्तं सौमनसं युगम्। तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते॥ १०६॥
मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च। तथाप्येह सदा ब्राह्मे मनवस्तु चतुर्दश॥ १०७॥
कथ्यन्ते कुरुशार्दूल संख्यया पण्डितैः सदा। मनोः स्वायम्भुवस्येह षड्वंश्या मनवोऽपरे॥ १०८॥
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वाः महात्मानो महौजसः। सावर्णेयस्तथा पञ्चभौत्यो रौच्यस्तथापरः॥ १०९॥
एते भविष्या मनवः सप्त प्रोक्ता नृपोत्तमा। स्वस्वेऽन्तरे सर्वमिदं पालयन्ति चराचरम्॥ ११०॥
एवंविधं दिनं तस्य विरिञ्चेस्तु महात्मनः। तस्यान्ते कुरुते सर्गं यथेदं कथितं तव॥ १११॥

अभी देवताओं के जिस १२००० वर्ष वाले युग का वर्णन किया गया, उसके ७१ गुणित का एक मन्वन्तर होता है। ऐसे कितने मन्वन्तर व्यतीत हो गये, उसकी गणना नहीं की जा सकती। इसी प्रकार प्रलय तथा सृष्टि की भी कोई संख्या-सीमा नहीं है। फिर भी ब्रह्मा के एक दिवस में १४ मनु का कार्यकाल व्यतीत हो जाता है। हे कुरुशार्दूल! पण्डितजन संख्या से यही निश्चय करते हैं। स्वायम्भुव मनु के वंशोत्पत्ति अन्य छह मनुगण महान् ऐश्वर्यवान् तथा अमित तेजस्वी थे। प्राक्काल में वे भी प्रजासृष्टि कर चुके। हे नृपश्रेष्ठ! सावर्णेय, पञ्चभौत्य तथा रौच्य आदि सप्तमनु भविष्य में उत्पन्न होंगे। वे अपने-अपने काल में प्रजा की सृष्टि द्वारा सचराचर जगत् का पालन करेंगे। महात्मा ब्रह्मा का यही दिन है। उसके अन्त में वे सृष्टि करते हैं। मैंने यह पहले कहा है॥१०६-१११॥

क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी नराधिप। चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे॥ ११२॥
नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्याणां प्रवर्तते। इतरेष्वागमास्तात धर्मश्च कुरुनन्दन॥ ११३॥
यादृशाः परिहीयन्ते यथाह भगवान्मनुः। चौर्याच्चाप्यनृताद्राजन्मायाभिरमितद्युते॥ ११४॥
पादेन हीयते धर्मस्त्रेतादिषु युगेषु वै। अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः॥ ११५॥

हे नराधिप! वे परमेष्ठी ब्रह्मा सचराचर सृष्टि को क्रीड़ा में ही सम्पन्न कर देते हैं। सत्ययुग में सर्वधर्म चतुष्पाद होते हैं। तब मनुष्य कथमपि अधर्म में प्रवृत्त नहीं होते। हे कुरुनन्दन! अन्य युगों में मनुष्य की प्रकृति हीन हो जाती है। उसे मनु ने परिभाषित

किया है। हे राजन्! चौर्यकर्म, असत्यभाषण, मायिक स्वभाव के कारण त्रेतादि युगों में सभी धर्म एक-एक चरण से रहित होते जाते हैं। सत्ययुग के मानव रोगरहित तथा सर्वसिद्धि तथा इच्छापूर्ति की सिद्धि के कारण ४०० वर्ष जीते थे॥११२-११५॥

कृतत्रेतादिषु त्वेषां वयो हसति पादशः। वेदोक्तमायुराशीश्च मर्त्यानां कुरुनन्दन॥११६॥

कर्मणां तु फलं तात फलत्यनुयुगं सदा। प्रभावश्च तथा लोके फलत्येव शरीरिणाम्॥११७॥

त्रेतादि युगों में आयु के एक-एक चरण का हास होता जाता है। हे कुरुनन्दन! यद्यपि वेदों में जिस आयु का वर्णन है तथा आशीर्वचनादि के फलों का जो उल्लेख है, वे फल युगानुरूप कर्म के शुभत्व तथा अशुभत्व के तारतम्य से ही फलित होते हैं। शरीरिण का प्रभाव तथा लोक में उसका फल भी युगानुरूप ही मिलता है॥११६-११७॥

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे। अन्ये कलियुगे नृणां युगधर्मानुरूपतः॥११८॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। द्वापरे यज्ञमित्याहुर्दानमेकं कलौ युगे॥११९॥

सर्वस्य राजन्सर्गस्य गुप्त्यर्थं च महाद्युते। मुखबाहूरुपादानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत्॥१२०॥

सत्ययुग का अन्य धर्म था, त्रेता का अलग धर्म था, द्वापर में कुछ और धर्म था। कलि में अन्य धर्म है। कहना यह है कि मनुष्य के धर्म युगधर्म से प्रभावित होकर बदलते रहते हैं। सत्ययुग का धर्म था तप, त्रेता का धर्म था ज्ञान, द्वापर का धर्म था यज्ञ एवं कलियुग का परमधर्म है दान। हे महाद्युते! सृष्टि के रक्षणार्थ भगवान् ने अपने मुख से (ब्राह्मण), बाहु से (क्षत्रिय), उरुसे (वैश्य) तथा चरणों से (शूद्र) उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के कर्मों का निर्धारण कर्मों के विभाजन द्वारा किया है॥११८-१२०॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥१२१॥

प्रजानां पालनं राजन् दानमध्ययनं तथा। विषयेषु प्रसक्तिं च तथेज्यां क्षत्रियस्य तु॥१२२॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च॥१२३॥

एकमेव तु शूद्रस्य कर्म लोके प्रकीर्तितम्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनुपूर्वशः॥१२४॥

ब्राह्मणों के लिये नियत कर्म हैं— अध्ययन, अध्यापन, यज्ञाराधना, यज्ञ-अनुष्ठान करना तथा दान प्रदान करना, दान लेना। हे राजन्! तदनुरूप क्षत्रिय के नियत कर्म हैं— प्रजापालन, दान प्रदान करना, अध्ययन, विषय सेवन तथा यज्ञाराधना। तदनुरूप वैश्यों के नियत कर्म हैं— पशुरक्षण, दान देना, यज्ञाराधन, अध्ययन, वाणिज्य, व्याज लेना तथा कर्ज देना तथा कृषि। इस लोक में शूद्रों का एक ही कर्म है — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की शुश्रूषा॥१२१-१२४॥

पुरुषस्य सदा श्रेष्ठं नाभेरूर्ध्वं नृपोत्तम। तस्मादपि शुचितरं मुखं तात स्वयम्भुवः॥१२५॥

तस्मान्मुखादिद्वजो जात इतीयं वैदिकी श्रुतिः। सर्वस्यैवास्य धर्मस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः॥१२६॥

स सृष्टो ब्रह्मणा पूर्वं तपस्तप्त्वा कुरुद्वह। हव्यानामिव कव्यानां सर्वस्यापि च गुप्तये॥१२७॥

अश्नन्ति च मुखेनास्य हव्यानि त्रिदिवौकसः। कव्यानि चैव पितरः किम्भूतमधिकं ततः॥१२८॥

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः। बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥१२९॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः। कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः॥१३०॥

हे नृपोत्तम! पुरुष के देह का नाभि से ऊर्ध्व का भाग उत्तम माना गया है। इनमें भी मुख पवित्रतर है। वेदों से यह जाना गया है कि स्वयम्भुदेव के उसी पवित्र मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हैं। अपने धर्मपथ पर चलने के ही कारण ब्राह्मण को समस्त धार्मिक कार्य हेतु प्रभु, श्रेष्ठ माना गया है। हे कुरुश्रेष्ठ! ब्रह्मदेव ने प्रभूत तप करके सर्वप्रथम ब्राह्मणों की सृष्टि हव्य (यज्ञादि में जो देवों हेतु अर्पित करते हैं) तथा कव्य (पितरों हेतु जो श्राद्धादि में प्रदान करते हैं) के समान सबकी रक्षा के लिये की थी। ब्राह्मण जो भक्षण करता है, वह देवगण द्वारा ही द्रव्य रूप में भक्षण किया जाता है। अर्थात् इनके ही मुख से देवगण हव्य ग्रहण करते हैं। पितरगण भी इनके मुख से कव्य ग्रहण करते हैं। इससे मुख्य बात और क्या हो सकती है? भूतसमूह में प्राणधारण करने वाले श्रेष्ठ हैं, प्राणियों

में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ हैं (बुद्धिजीवी अर्थात् जिनमें बुद्धि विकसित है), बुद्धिजीवियों में मनुष्य तथा मनुष्य में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। इनसे श्रेष्ठ हैं दृढ़ बुद्धि वाले। इससे भी श्रेष्ठ हैं जो धर्माचरण करते हैं। इनसे तथा सबसे श्रेष्ठ हैं ब्रह्मज्ञ व्यक्ति॥१२५-१३०॥

जन्म विप्रस्य राजेन्द्र धर्मार्थमिह कथ्यते। उत्पन्नः सर्वसिद्ध्यर्थं याति ब्रह्मसदो नृप॥ १३१॥
स चापि जायमानस्तु पृथिव्यामिह जायते। भूतानां प्रभवार्थैव धर्मकोशस्य गुप्तये॥ १३२॥
सर्वं हि ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चित्पृथिवीगतम्। जन्मना चोत्तमेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति॥ १३३॥
स्वकीयं ब्राह्मणो भुङ्क्ते विदधाति च सुव्रत। करुणां कुर्वतस्तस्य भुञ्जन्तीहेतरे जनाः॥ १३४॥
त्रयाणामिह वर्णानां भावाभावाय वै द्विजः। भवेद्राजजत्र सन्देहस्तुष्टो भावाय वै द्विजः॥ १३५॥
अभावाय भवेत्कुब्जस्तस्मात्पूज्यतमो हि सः। ब्राह्मणे सति नान्यस्य प्रभुत्वं विद्यते नृप॥ १३६॥
कामात्करोत्यसौ कर्म कामगश्च नृपोत्तम। तस्माद्वृन्दारकपुरी तस्मादपि महः पुनः॥ १३७॥
महर्लोकज्जनोलोकं ब्रह्मलोकं च गच्छति। ब्रह्मत्वं च महाबाहो याति विप्रो न संशयः॥ १३८॥

हे राजेन्द्र! कहा गया है कि ब्राह्मण का जन्म ही है धर्म हेतु। हे नृप! उसका जन्म हुआ है सर्वसिद्धि उपार्जनार्थ। सर्वान्त में उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। इस भूतल पर ब्राह्मण प्राणियों पर आधिपत्य हेतु तथा धर्मकोश के रक्षार्थ जन्म लेता है। जो सब इस पृथिवी पर स्थित है, सभी ब्राह्मण का ही है। वह उत्तमजन्मा होने के कारण सब पाने का अधिकारी है। हे सुव्रत! ब्राह्मण स्वकीय अन्न खाता है, तथापि लोककल्याणार्थ करुणा करने के लिये सतत तत्पर रहता है। उसकी इस भावना का सभी लाभ उठाते हैं। इस धरा पर ब्राह्मण तीनों वर्ण का कल्याण तथा अकल्याण कर सकता है। यह संशयरहित है। वह सन्तुष्ट होकर कल्याण करने में समर्थ है, साथ ही कुपित ब्राह्मण अकल्याण करने की भी शक्ति रखता है। इसलिये वह सर्वाधिक पूज्य भी है। हे नृप! जब ब्राह्मण में विद्यमान है, तब अन्य का प्रभुत्व नहीं चल सकता। हे नृपोत्तम! ब्राह्मण सभी कर्म स्वेच्छा से ही करता है। वह जहाँ चाहे अपनी इच्छा से ही जाता है। वह इसी मृत्युलोक से सीधे देवलोक की प्राप्ति करके वहाँ से महर्लोक, महर्लोक से जनलोक और वहाँ से भी ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है। हे महाबाहो! निःसन्दिग्ध रूप से ब्राह्मण को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है॥१३१-१३८॥

शतानीक उवाच

ब्रह्मत्वं नाम दुष्प्रापं ब्रह्मलोकेषु सुव्रत॥ १३९॥
ब्रह्मत्वं कीदृशं विप्रो ब्रह्मलोकं च गच्छति। नाममात्रोऽथ किं विप्रो ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः सदा॥
याति ब्रह्मन्पुनः के स्युर्ब्रह्मप्राप्तौ ममोच्यताम्॥ १४०॥

शतानीक कहते हैं— हे सुव्रत! ब्रह्मलोक में ब्रह्मत्व की प्राप्ति दुर्लभ है। ब्राह्मण कैसे ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मत्व प्राप्त करता है? क्या जो नाममात्र का ब्राह्मण है, वह सदा ब्रह्मपद पाता है? हे ब्रह्मन्! ब्रह्मपद प्राप्ति हेतु जो साधन है, उसके गुण क्या हैं? यह सब कहें॥१३९-१४०॥

सुमन्तुरुवाच

साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः॥ १४१॥
ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु। गर्भाधानादयो ये च संस्कारा यस्य पार्थिव॥ १४२॥
चत्वारिंशत्तथाष्टौ च निर्वृत्ताः शास्त्रतो नृप। स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वं च मानदम्॥
संस्काराः सर्वथा हेतुर्ब्रह्मत्वे नात्र संशयः॥ १४३॥

सुमन्तु कहते हैं— हे महाबाहो! साधु-साधु! अब मेरी श्रेष्ठ बातों को सुनें। हे पार्थिव! ब्राह्मण हेतु वेदों में संस्कार कहे गये हैं। गर्भाधानादि जो ४८ संस्कार हैं, उनसे जो यथाविधान संस्कृत है, वही ब्राह्मण ब्रह्मस्थान को प्राप्त करता है। हे मानव! वही यथार्थ ब्रह्मत्व की प्राप्ति करता है। यह निःसन्दिग्ध है कि ब्रह्मत्व प्राप्ति हेतु संस्कार ही प्रधान हैं॥१४१-१४३॥

शतानीक उवाच

संस्काराः के मता ब्रह्मन्ब्रह्मत्वे ब्राह्मणस्य तु। शंस मे द्विजशार्दूल कौतुकं हि महन्मम॥ १४४॥

शतानीक कहते हैं— हे द्विजशार्दूल! ब्रह्मन्! ये संस्कार कौन से हैं? जिसे ब्राह्मण के लिये ब्रह्मत्व प्राप्ति का साधन माना गया है। इस सम्बन्ध में मुझे अत्यन्त कुतूहल है। कृपया कहें॥१४४॥

सुमन्तुरुवाच

साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः। ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु॥

मनीषिभिर्महाबाहो शृणु सर्वानशेषतः॥१४५॥

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा। जातकर्मात्राशनं च चूडोपनयनं नृप॥१४६॥
ब्रह्मव्रतानि चत्वारि स्नानं च तदनन्तरम्। सधर्मचारिणीयोगो यज्ञानां कर्म मानद॥१४७॥
पञ्चानां कार्यमित्याहुरात्मनः श्रेयसे नृप। देवपितृमनुष्याणां भूतानां ब्राह्मणस्तथा॥१४८॥
एतेषां चाष्टकाकर्म पार्वणश्राद्धमेव हि। श्रावणी चाग्रहायणी चैत्री चाश्वयुजी तथा॥१४९॥
पाकयज्ञास्तथा सप्त अग्न्याधानं च सत्क्रियाः। अग्निहोत्रं तथा राजन्दर्शं च विधुसंक्षये॥१५०॥
पौर्णमासं च राजेन्द्र चातुर्मास्यानि चापि हि। निरूपणं पशुवधं तथा सौत्रामणीति च॥१५१॥
हविर्यज्ञास्तथा सप्त तेषां चापि हि सत्क्रियाः। अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोमस्तथोक्थ्यः षोडशीं विदुः॥१५२॥
वाजपेयोऽतिरात्रश्च आप्तोर्यामेति वै स्मृतः। संस्कारेषु स्थिताः सप्त सोमाः कुरुकुलोद्वह॥१५३॥

सुमन्तु कहते हैं— हे महाबाहो! आपको साधुवाद! मेरी श्रेष्ठ बातों को सुनें। मनीषीगण ने वेद तथा शास्त्र में ब्राह्मणों हेतु जिन संस्कारों का विधान किया है, उनको सुनिये। हे राजन्! गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, ४ प्रकार के ब्रह्मचर्याश्रम के व्रत, स्नान, विवाह, पंचयज्ञानुष्ठान को आत्मकल्याणार्थ उपादेय कहा गया है। यज्ञानुष्ठान आत्मकल्याणार्थ परम उपादेय है। देव, पितर, मनुष्य, भूत तथा ब्रह्म के लिये अष्टमी तिथि को किया जाने वाला अष्टकाकर्म, श्रावण-अगहन-चैत्र तथा आश्विनपूर्णिमा के दिन पार्वण श्राद्ध, सात पाकयज्ञ, अग्निस्थापना, सत्क्रिया, अग्निहोत्र, अमावस्या का दर्श श्राद्ध, पौर्णमास श्राद्ध, चातुर्मास्य निरूपण, पशुवध, सौत्रामणि याग, सात प्रकार के हविर्यज्ञ की सत्क्रिया, अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम। ये सब संस्कार हैं। इनमें ७ सोमयज्ञ भी हैं॥१४५-१५३॥

इत्येते द्विजसंस्काराश्चत्वारिंशन्नृपोत्तम। अष्टौ चात्मगुणास्तात शृणु तानपि भारत॥१५४॥
अनसूया दया क्षान्तिरनायासं च मङ्गलम्। अकार्पण्यं तथा शौचमस्पृहा च कुरुद्वह॥१५५॥
य एतेऽष्टगुणास्तात कीर्त्यन्ते वै मनीषिभिः। एतेषां लक्षणं वीर शृणु सर्वमशेषतः॥१५६॥
न गुणान्गुणिनो हन्ति न स्तौत्यात्मगुणानपि। प्रहृष्यन्ते नान्यदोषैरनसूया प्रकीर्तिता॥१५७॥
अपरे बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा। आत्मवद्वर्तनं यत्स्यात्सा दया परिकीर्तिता॥१५८॥
वाचा मनसि काये च दुःखेनोत्पादितेन च। न कुप्यति न चाप्रीतिः सा क्षमा परिकीर्तिता॥१५९॥
अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः। आचारे च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तितम्॥१६०॥

हे नृपोत्तम! ये सब ब्राह्मणों के ४० संस्कार हैं। हे भारत! ब्राह्मणों के ८ स्वाभाविक गुणों को सुनें। असूयारहित होना, दया, क्षान्ति, आयासरहित होना, मंगल, अकार्पण्य, शौच तथा अस्पृहा। हे तात! मनीषीगण द्वारा कथित ब्राह्मणों के इन आठ स्वाभाविक गुणों के सम्पूर्ण लक्षणों को सुनें। जो अन्य गुणवानों के गुण की निन्दा नहीं करता अथवा उनके गुणों की उपेक्षा नहीं करता, अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करता, दूसरे लोगों के दोषों को जानकर भी प्रसन्न नहीं होता, उसका यही गुण असूयारहित होना है। जो बन्धुओं में, मित्रों में, शत्रुओं में सम-व्यवहार (आत्मवत् व्यवहार) करना है, वही दया है। यदि कोई मन तथा शरीर को कष्टकर बातें कहता है, तथापि सुनकर वह क्रोधित नहीं होता, दुःखानुभव नहीं करता— वह क्षमा है। अभक्ष्य भक्षण का त्याग, प्रशंसनीय कृत्य का सम्पर्क तथा सदाचारयुक्त रहना ही शौच है॥१५४-१६०॥

शरीरं पीडयते येन शुभेनापि च कर्मणा। अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते॥ १६१॥
 प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम्। एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥ १६२॥
 स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना। अहन्यहनि यत्किञ्चिदकार्पण्यं तदुच्यते॥ १६३॥
 यथोत्पन्नेन सन्तुष्टः स्वल्पेनाप्यथ वस्तुना। अहिंसया परस्वेषु साऽस्पृहा परिकीर्तिता॥ १६४॥
 वपुर्यस्य तु इत्येतैः संस्कारैः संस्कृतं द्विजः। ब्रह्मत्वमिह सम्प्राप्य ब्रह्मलोकं च गच्छति॥ १६५॥

जिस शुभ कार्य से शरीर को कष्ट हो, वह कर्म त्याग दें। यही अनायास है। प्रशंसित कर्म का आचरण करें तथा निन्दित घृणित कर्म का त्याग करें। इसे ब्रह्मवादीगण मंगल कहते हैं। नित्य प्रसन्नता से भले ही किञ्चित् दान दिया जाये, वह अकार्पण्य है। जो स्वल्प प्राप्ति में ही सन्तुष्ट है, अन्य जन के प्रति, उसके धन के प्रति हिंसा भाव न रखना ही अस्पृहा है। हे द्विज! जो इन संस्कारों से युक्त है, वह इसी लोक में ब्रह्मस्वरूप होकर सर्वान्त में ब्रह्मलोक प्राप्त करता है॥ १६१-१६५॥

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकाद्यैर्द्विजन्मनाम्। कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥ १६६॥
 गर्भशुद्धिं ततः प्राप्य धर्मं चाश्रमलक्षणम्। याति मुक्तिं न सन्देहः पुराणेऽस्मिन्नृपोत्तम॥ १६७॥
 उशान्तिं कुरुशार्दूल ब्राह्मणा नात्र संशयः। आश्रितानां विशेषेण ये नित्यं स्वस्तिवादिनः॥ १६८॥
 निकटस्थान्द्विजाह्निह्वा योऽन्यान्पूजयति द्विजान्। सिद्धं पापं तदपमानात्तद्वक्तुं नैव शक्यते॥ १६९॥
 तस्मात्सदा समीपस्थः सम्पूज्यो विधिवन्नृप। पूजयेदतिथींस्तद्वदन्नपानादिदानतः॥ १७०॥
 ब्राह्मणः सर्ववर्णानां ज्येष्ठः श्रेष्ठस्तथोत्तमः। एवमस्मिन्पुराणे तु संस्कारान्ब्राह्मणस्य तु॥ १७१॥
 शृणोति यश्च जानाति यश्चापि पठते सदा। ऋद्धिं वृद्धिं तथा कीर्तिं प्राप्येहश्रियमुत्तमाम्॥ १७२॥
 धनं धान्यं यश्चापि पुत्रान्बन्धून्सुरूपताम्। सावित्रं लोकमासाद्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥ १७३॥

॥ इति श्रीभविष्यमहापुराणे शतार्थसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
 पुराणोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इहलोक तथा परलोक की सफलता हेतु द्विजगण विहित वैदिक अनुष्ठान से शरीर का पवित्रीकरण संस्कार करें। हे राजन्! इस विधान से शरीर संस्कृत होने पर तथा गर्भशुद्धि के अनन्तर, पुराणवचन के अन्तर्गत, अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुये मुक्त हो जाता है। इसमें तनिक सन्देह नहीं है। हे कुरुशार्दूल! आश्रितों के लिये स्वस्तिवाचन करने वाले ब्राह्मण सदा प्रसन्न रहते हैं। जो अपने समीप रहने वाले विप्रों को छोड़कर अन्य विप्रों का पूजन करते हैं, मानो उनके द्वारा अपने समीप रहने वाले ब्राह्मणों का अपमान कर दिया गया है। वे ऐसे पाप के भागी होते हैं, जिसे कहा ही नहीं जा सकता। सदा निकटस्थ ब्राह्मणों का पूजन करें। भोजन तथा पेय पदार्थों से अभ्यागत, अतिथि का सत्कार करें। ब्राह्मण सभी वर्णों की तुलना में वरिष्ठ, उत्तम तथा श्रेष्ठ है। जो व्यक्ति इस पुराणोक्त ब्राह्मण संस्कारों को सदा सुनता है, उसे इहलोक में ऋद्धि, वृद्धि, कीर्ति, उत्तम लक्ष्मी, धन, धान्य, यश, पुत्र, बन्धु, सुन्दर स्वरूप प्राप्त होता है। वह अन्त में सविता के लोक को प्राप्त करके सर्वान्त में ब्रह्मलोक में स्थित हो जाता है॥ १६६-१७३॥

॥ श्रीभविष्यमहापुराण में शतार्थ साहस्री नामक संहिता के ब्राह्मपर्व में
 पुराण की उत्पत्ति नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

★★★